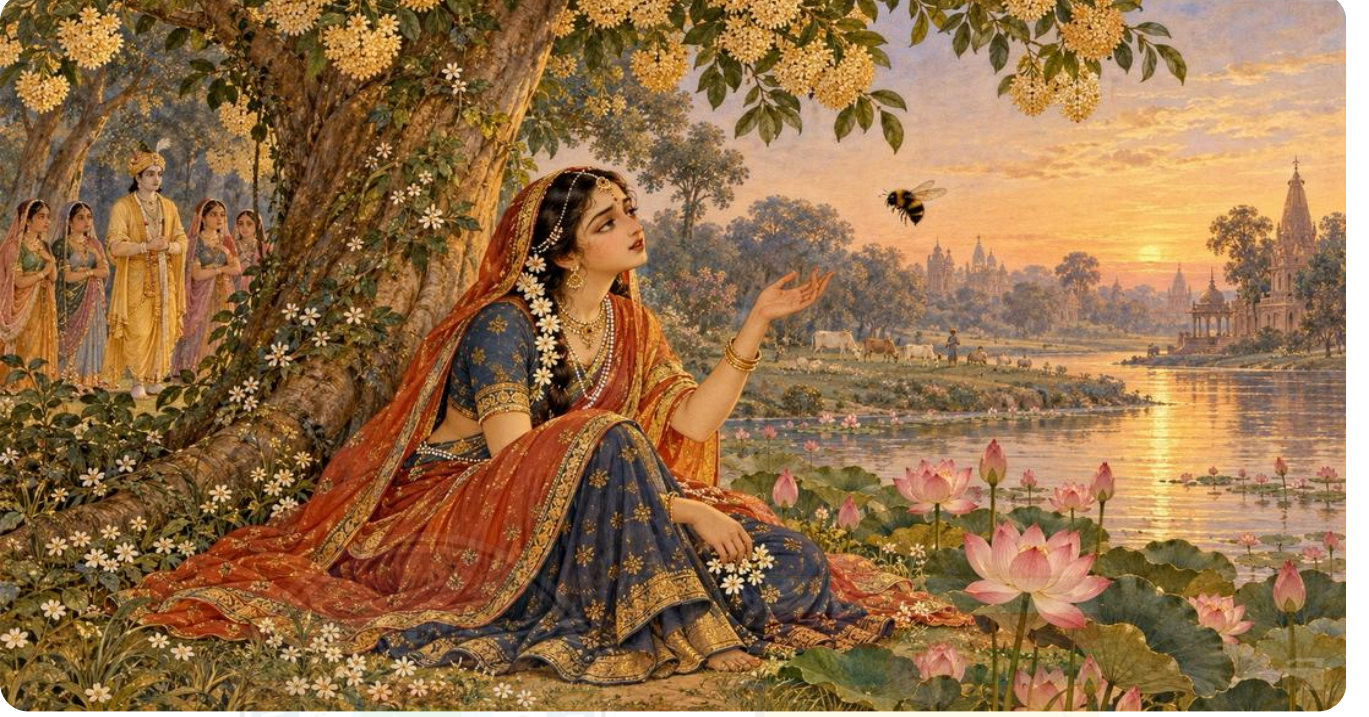


श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 47 — भ्रमरगीत

5 October 2026



ब्रज की एक विरह-व्याकुल गोपी के सामने एक भ्रमर मँडराता है, और वह उससे ऐसे बोल उठती है मानो वह कृष्ण का ही दूत हो — उलाहना, तड़प और अटूट प्रेम एक साथ भ्रमरगीत में उमड़ पड़ते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस सैंतालीसवें अध्याय में उद्धव प्रातःकाल गोपियों से मिलते हैं, भ्रमरगीत सुनते हैं, विरह पर कृष्ण का सन्देश सुनाते हैं और मथुरा लौटते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10
- अध्याय: 47
- अध्याय शीर्षक: भ्रमरगीत

- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी; अध्याय के भीतर गोपियाँ, उद्धव और कृष्ण का सन्देश
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: ब्रज में नन्द का गोकुल; अन्त में मथुरा
- केंद्रीय विषय: भ्रमरगीत; विरह पर कृष्ण का सन्देश; उद्धव का गोपी-वन्दन और वापसी
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 47, श्लोक 1-69
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

गोपियाँ उद्धव को घेर लेती हैं

प्रातः जब उद्धव यमुना-तट से लौटे, ब्रज की स्त्रियों ने कृष्ण के उस सेवक को निहारा — लम्बी भुजाएँ, कमल-से नेत्र, पीताम्बर, कमल-माला और चमकते कुण्डल — और आपस में पूछा कि अच्युत के ही वेश में सजा यह अपरिचित कौन है। भगवान् के चरणों के आश्रित उस भक्त को उन्होंने उत्सुकता से घेर लिया; उसे कृष्ण का दूत समझकर लजीली मुस्कान और मधुर वचनों से स्वागत किया, आसन दिया और संकोच से सिर झुकाए एकान्त में प्रश्न पूछे।



प्रातःकाल ब्रज की स्त्रियाँ नवागत उद्धव को घेर लेती हैं, यह देखकर चकित कि उनका वेश और शृंगार कृष्ण से कितना मिलता है, और उन्हें भगवान् का दूत समझती हैं।

“ऐसी मित्रता स्वार्थ तक ही टिकती है”

“हम जानती हैं,” उन्होंने कहा, “आप यदुपति के सखा हैं, अपने माता-पिता को सुख देने भेजे गए हैं। नहीं तो गौओं के चरागाह इस ब्रज में उनके स्मरण योग्य क्या है? मुनि के लिए भी स्वजनों का स्नेह तोड़ना कठिन है, पर परायों का स्नेह उतना ही टिकता है जितना प्रयोजन सधे — जैसे भौरे का फूल से।” कड़वाहट से उन्होंने गिनाया कि संसार अनावश्यक को कैसे त्याग देता है: वेश्याएँ निर्धन प्रेमी को, प्रजा असमर्थ राजा को, विद्या पा चुके शिष्य गुरु को, दक्षिणा पा चुके ऋत्विज यजमान को, पक्षी फलहीन वृक्ष को, अतिथि भोजन के बाद घर को, पशु जले वन को, और जार भोगी हुई स्त्री को।

यों बोलती गोपियाँ — जिनकी वाणी, देह और मन सर्वथा गोविन्द के थे — लोक-मर्यादा भूल गई; कृष्ण के बाल्य और कौमार की लीलाएँ याद कर वे गा-गाकर रोने लगीं, सारी लज्जा छोड़कर। तभी एक गोपी, उनके साथ अपने मिलन की स्मृति में डूबी, सामने एक भ्रमर देखकर उसे प्रियतम का दूत समझ बैठी और उससे बोल उठी। परम्परा उसमें स्वयं श्री राधा को पहचानती है।

भ्रमर को सम्बोधित गीत

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः

कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।

वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं

यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

*madhupa kitava-bandho mā spṛśāṅghrīm sapatnyāḥ kuca-vilulita-mālā-kuṅkuma-śmaśrubhir
naḥ vahatu madhu-patis tan-māninīnām prasādaṁ yadu-sadasi viḍambyaṁ yasya dūtas tvam
īdṛk*

अर्थ: हे मधुप, कपटी के मित्र! हमारी सौत के वक्षस्थल पर मसली गई माला के कुंकुम से रंगी अपनी मूँछों से हमारे चरण मत छू। जिसका दूत तुझ-जैसा है, वह मधुपति उन मानिनियों का प्रसाद स्वयं ढोएँ — यदुसभा में उसकी हँसी ही उड़ेगी। (स्कन्ध 10, अध्याय 47, श्लोक 12)

वह आगे बोली — अपने अधरों का अमृत एक बार चखाकर उन्होंने हमें क्षण भर में त्याग दिया, जैसे भौंरा फूल को; लक्ष्मी उनके चरण इसीलिए सेवती हैं कि उनकी मीठी बातों ने उनका मन हर लिया है। “हे षट्पद, हम बेघर स्त्रियों के आगे उनका गुणगान क्यों? उसे मथुरा की उनकी नई सखियों को सुना; वे तुझे मनचाहा देंगी।” तीनों लोकों में कौन स्त्री उनकी भौंहों के खेल और मुस्कान को ठुकरा सके — और हम उनके लिए हैं ही क्या, जिनकी चरण-धूलि स्वयं लक्ष्मी पूजती हैं? फिर भी ‘उत्तमश्लोक’ नाम उसी का है जो दीनों का पक्ष ले। “मेरा पैर छोड़, जिस पर तूने सिर रखा है — यह चापलूसी तूने उन्हीं से सीखी है। जिन्होंने उनके लिए सन्तान, पति और परलोक छोड़ दिया, उन्हें वे छोड़ गए। उनसे सन्धि करके क्या मिलेगा?”

उसका उलाहना पूर्व अवतारों तक जा पहुँचा: राम के रूप में उन्होंने व्याध की तरह वालि को मारा और पत्नी के वश में होकर कामना से आई एक स्त्री को कुरूप किया; वामन के रूप में बलि का दान लेकर उसे ही बाँध दिया, जैसे कौआ अपने खिलाने वाले पर झपटे। “बस, इस श्यामवर्ण से मित्रता बहुत हुई — फिर भी उनकी कथाओं का खज़ाना छोड़ा नहीं जाता।” जो उस अमृत की एक बूँद चख लेता है, वह घर छोड़कर पक्षी-सा भिक्षु बनकर भटकता है। “व्याध के संगीत पर भरोसा करने वाली मूर्ख हरिणियों की तरह हमने उनके झूठे वचन सच माने और बार-बार दुःख पाया। हे दूत, कोई और बात कर।”

फिर शोक तड़प में घुल गया। “हे हमारे प्रियतम के सखा — क्या उन्होंने तुझे फिर भेजा है? जो चाहे माँग, मान्यवर। पर तू हमें उनके पास कैसे ले जाएगा, जिनका संग एक बार पाकर छोड़ा नहीं जाता, जिनके वक्ष पर स्वयं श्री बसती हैं? क्या मेरे प्रियतम अब मथुरा में हैं? क्या वे पिता का घर, बन्धुओं और गोपों को याद करते हैं? क्या कभी हम दासियों की बात करते हैं? कब वे अगरु-सी सुगन्धित भुजा हमारे सिर पर रखेंगे?”

उद्धव गोपियों को सराहना करते हैं

प्रेम का यह उद्गार सुनकर उद्धव गोपियों को उनके प्रियतम के ही वचनों से धीरज देने लगे। “आप धन्य हैं,” उन्होंने कहा, “और समस्त लोकों की पूज्य, क्योंकि आपका मन पूर्णतः भगवान् वासुदेव में अर्पित है। लोग दान, व्रत, तप, हवन, जप, वेदाध्ययन और संयम से जिसे पाना चाहते हैं, वह कृष्ण-भक्ति ही है; आपने उसका वह आदर्श स्थापित किया है जो मुनियों के लिए भी दुर्लभ है — सन्तान, पति, घर और देह तक की कीमत पर उन्हें चाहकर। विरह से आपको उनमें अनन्य भक्ति मिली है, और उसे देखने देकर आपने मुझ पर अनुग्रह किया है। अब अपने प्रियतम का सन्देश सुनिए, जिसे लेकर मैं, उनका विश्वासपात्र, आया हूँ।”



गोपियों की अनुपम भक्ति की सराहना करने के बाद उद्धव वे वचन कहने लगते हैं जो कृष्ण ने ब्रज की स्त्रियों के लिए उन्हें सौंपे थे।

भगवान् का सन्देश

भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु खं वाय्वग्निर्जलं मही ।
तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणाश्रयः ॥ २९ ॥

bhavatīnām viyogo me na hi sarvātmanā kvacit yathā bhūtāni bhūteṣu khaṁ vāyv-agnir jalam mahī tathāhaṁ ca manaḥ-prāṇa-bhūtendriya-guṇāśrayaḥ

अर्थ: श्रीभगवान् कहते हैं — मुझ सर्वात्मा से आपका वियोग कभी सम्भव नहीं। जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी समस्त प्राणियों में विद्यमान हैं, वैसे ही मैं मन, प्राण, भूत, इन्द्रिय और गुणों का आश्रय हूँ। (स्कन्ध 10, अध्याय 47, श्लोक 29)

भगवान् ने आगे कहा — अपनी माया से मैं अपने में ही अपने को इस जगत् के रूप में रचता, पालता और समेटता हूँ। आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वरूप, गुणातीत और निर्मल है; वह माया-जनित जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति द्वारा अनुभव में आती है। इसलिए सावधान रहकर उस मन को वश में करो जो स्वप्न-सी मिथ्या विषयों की कल्पना करता है। वेद, योग, सांख्य, त्याग, तप, इन्द्रिय-संयम और सत्य — सब मन के निग्रह में ही समाप्त होते

हैं, जैसे नदियाँ समुद्र में।

यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ।

मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥ ३४ ॥

yat tv aham bhavatinām vai dūre varte priyo dṛśām manasaḥ sannikarṣārthaṁ mad-anudhyāna-kāmyayā

अर्थ: मैं, आपका प्रियतम, आपकी आँखों से दूर इसीलिए रहता हूँ कि मेरे निरन्तर ध्यान से आपका मन मेरे और निकट आ जाए। (स्कन्ध 10, अध्याय 47, श्लोक 34)

उन्होंने समझाया — स्त्री का मन सामने रहने वाले प्रियतम में उतना नहीं रमता जितना दूर रहने वाले में। सारा मन मुझमें लगाकर सदा मेरा स्मरण करती हुई आप शीघ्र मुझे पा लेंगी — जैसे वे भाग्यशाली स्त्रियाँ, जो उस वन-रात्रि में व्रज में रोक ली गई, फिर भी केवल चिन्तन से मुझे पा गई।

गोपियाँ फिर अपना हृदय खोलती हैं

सन्देश से प्रसन्न, स्मृतियाँ जाग उठने पर गोपियाँ फिर बोलीं। सौभाग्य से यदुओं को सताने वाला कंस मारा गया और कृष्ण बन्धुओं में कुशल हैं। पर क्या गद के बड़े भाई अब नगर की स्त्रियों को सुख देते हैं? क्या उनके बीच कभी हम गँवार स्त्रियों की चर्चा करते हैं? क्या उन्हें वृन्दावन की रास की चाँदनी रातें याद हैं? क्या वे फिर आकर हमें वैसे जिलाएँगे जैसे इन्द्र के मेघ जलते वन को? अन्य बोलीं — वे अब क्यों आएँगे, जब शत्रु मार दिए, राज्य पा लिया और राजकुमारियों से विवाह कर लिया? आत्मतृप्त श्रीपति का हम वनवासिनियों से कौन-सा प्रयोजन सिधेगा? पिंगला ने भी निराशा को परम सुख कहा था — “हम जानती हैं, फिर भी कृष्ण से मिलने की आशा जीती नहीं जाती। उनकी अन्तरंग बातों से मन कौन हटा सके?” यमुना, गिरि, वन, गौएँ और वंशी-स्वर, कृष्ण और संकर्षण से पवित्र होकर, उनके पदचिह्नों से नन्दनन्दन को बार-बार लौटा लाते हैं; उनकी चाल, हँसी, चितवन और मीठे वचन मन को बाँधे हैं। और प्रार्थना में वे समाप्त हुई: “हे प्रभु, हे रमापति, हे व्रजनाथ, हे आर्तिनाशक, हे गोविन्द — दुःख-सागर में डूबे गोकुल को उबार लीजिए।”

व्रज में उद्धव के मास

वेदना बहुत कुछ शान्त हो जाने पर गोपियों ने उद्धव को साक्षात् कृष्ण मानकर पूजा। उनका शोक मिटाने वे कुछ महीने वहीं रहे, कृष्ण-लीलाओं के गान से गोकुल को आनन्दित करते रहे; व्रजवासियों के दिन उनकी चर्चा में पलों की तरह बीते, और उद्धव नदी-वन में घूमते हुए हर स्थान की लीला पूछते आनन्द में रहे।

व्रज-रज को उद्धव का प्रणाम

गोपियों की कृष्ण-तन्मयता से अभिभूत उद्धव ने उन्हें प्रणाम कर गाया: इन गोपियों ने ही मानव-देह सफल की है, क्योंकि इनका प्रेम सर्वात्मा गोविन्द में स्थिर है — वह प्रेम जिसे पुनर्जन्म से डरने वाले मुनि और हम स्वयं चाहते हैं; जिसे हरि-कथा का रस मिल गया, उसे ब्राह्मण-जन्मों या ब्रह्मा-पद से क्या लेना? कैसा आश्चर्य कि वन में घूमने वाली ये स्त्रियाँ, जिन्हें संसार पति के प्रति अनिष्ट कहता है, परमात्मा में ऐसा पूर्ण प्रेम रखती हैं — इसका प्रमाण कि भगवान् का स्वरूप न जानने वाले को भी वे केवल स्मरण पर परम कल्याण देते हैं, जैसे अमृत अनजाने पीने वाले को भी स्वस्थ कर देता है। रास में उन पर जो कृपा बरसी, वह न अप्सराओं को मिली, न उनके वक्ष पर रहने वाली श्री को।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥ ६१ ॥

*āsām aho caraṇa-reṇu-juṣām ahaṁ syāṁ vṛndāvane kim api gulma-latauṣadhīnām yā dustyajāṁ
sva-janam ārya-pathaṁ ca hitvā bhejur mukunda-padavīm śrutibhir vimṛgyām*

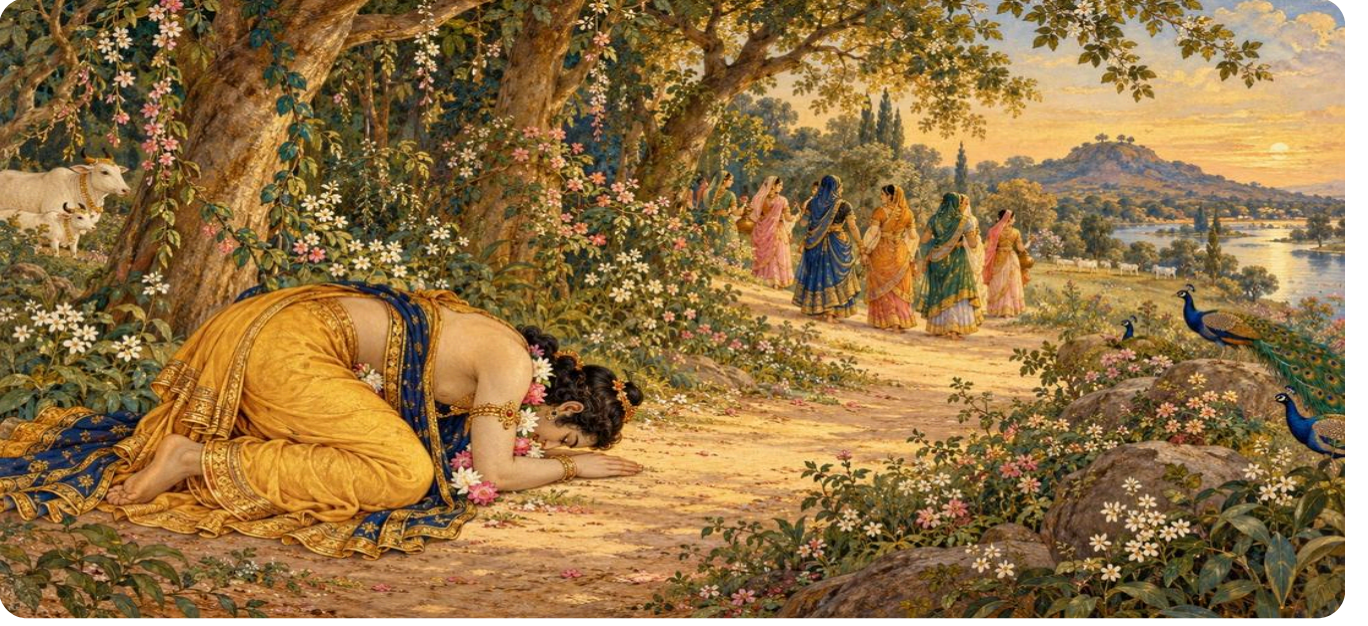
अर्थ: अहो! मैं वृन्दावन की कोई झाड़ी, लता या औषधि बन जाऊँ, जिसे इन गोपियों की चरण-रज मिले! अपने स्वजनों और आर्य-पथ को — जिन्हें छोड़ना अत्यन्त कठिन है — त्यागकर इन्होंने उस मुकुन्द-पदवी को अपनाया जिसे श्रुतियाँ आज भी खोज रही हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 47, श्लोक 61)

जिन चरणकमलों को श्री सहलाती हैं और ब्रह्मा, मुनि तथा योगेश्वर हृदय में पूजते हैं — उन्हीं को गोपियों ने रास में अपनाया और अपना सारा ताप मिटा लिया।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६३ ॥

*vande nanda-vraja-strīṇāṁ pāda-reṇum abhīkṣṇaśaḥ yāsāṁ hari-kathodgītāṁ punāti bhuvana-
trayam*

अर्थ: नन्द-व्रज की स्त्रियों की चरण-रज को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ, जिनका उच्च स्वर में गाया हरि-कथा-गान तीनों लोकों को पवित्र करता है। (स्कन्ध 10, अध्याय 47, श्लोक 63)



गोपियों के प्रेम से अभिभूत उद्धव उन्हें प्रणाम करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि वे वृन्दावन की कोई झाड़ी या लता बनें जिसे उनकी चरण-रज का स्पर्श मिले।

विदा और मथुरा को वापसी

गोपियों, यशोदा, नन्द और गोपों से विदा लेकर उद्धव रथ पर चढ़े। जैसे ही वे नन्द-भवन से निकले, नन्द और अन्य लोग कृष्ण-बलराम के लिए भेंटें लेकर आए और अश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रार्थना की: “हमारे मन की हर वृत्ति कृष्ण के चरणकमलों में रहे; हमारी वाणी उनके नाम कहे; हमारी देह उन्हें प्रणाम करे। कर्म और भगवान् की इच्छा हमें जहाँ भी डालें, हमारे सत्कर्मों का पुण्य हमारा प्रेम सर्वशक्तिमान् कृष्ण में लगाए रखे।”



आँखों में आँसू लिए नन्द और गोप कृष्ण-बलराम के लिए भेंटें लाते हैं, जब उद्धव प्रस्थान की तैयारी करते हैं, और प्रार्थना करते हैं कि उनका मन सदा उनके चरणकमलों में रहे।

इस भक्ति से सम्मानित उद्धव कृष्ण-रक्षित मथुरा लौटे, भगवान् को दण्डवत् प्रणाम किया, व्रज की उमड़ती भक्ति का वृत्तान्त सुनाया और नन्द की भेंटें उन्हें, वसुदेव, बलराम और राजा उग्रसेन को सौंप दीं।



मथुरा लौटकर उद्धव कृष्ण को दण्डवत् प्रणाम करते हैं, ब्रजवासियों की भक्ति का वृत्तान्त सुनाते हैं और नन्द की भेंटें भगवान्, वसुदेव, बलराम तथा राजा उग्रसेन को सौंपते हैं।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. विरह भगवान् का अपना साधन है, जिससे वे मन को निकट खींचते हैं। यही अध्याय का हृदय है। कृष्ण पहले आश्वासन देते हैं कि उनसे वियोग असम्भव है, क्योंकि वे हर प्राणी में व्याप्त हैं; फिर बताते हैं कि वे फिर भी दृष्टि से परे क्यों रहते हैं — ताकि गोपियों का मन, और कहीं टिकने की जगह न पाकर, अखण्ड स्मरण में उन्हें खोजे, क्योंकि दूर का प्रियतम पास वाले से अधिक पूर्णता से मन को रमा लेता है। जो गोपियाँ रास में न आ सकीं पर चिन्तन से उन्हें पा गई, वे इसका प्रमाण हैं। इस प्रकार विरह कृपा का हटना नहीं, उसका उपकरण है: भगवान् स्वयं दूरी रचते हैं ताकि प्रेम उनमें पूर्ण तन्मयता में पक जाए।
2. मन का निग्रह हर साधना का लक्ष्य है। वेद, योग, सांख्य, त्याग और तप सब मन के वश में ही पूरे होते हैं, जैसे नदियाँ समुद्र में; और दान, व्रत और अध्ययन, उद्धव कहते हैं, अन्ततः कृष्ण-भक्ति ही खोजते हैं।
3. जो प्रेम कुछ बचाकर नहीं रखता, वही सर्वोच्च उपलब्धि है। भगवान् के विश्वासपात्र उद्धव घोषणा करते हैं कि गोपियों ने ही मानव-जन्म सफल किया है, और बस इतना माँगते हैं कि वे उनकी चरण-रज से छुई कोई झाड़ी बनें।
4. उनकी महिमा जाने बिना भी स्मरण फल देता है। जैसे अमृत हर पीने वाले को स्वस्थ करता है, वैसे ही भगवान् उसे परम कल्याण देते हैं जो उन्हें मन में रखता है।

एक भक्तिमय चिन्तन

यहाँ सबसे अधिक जो हमें छूता है, वह गोपियों के प्रेम की सच्चाई है। वे कृष्ण को कपटी कहती हैं, उनके पूर्व अवतारों के अन्याय गिनाती हैं — और उसी साँस में मानती हैं कि उनकी कथाएँ छोड़ी नहीं जातीं। सच्चा प्रेम शान्त होने का दिखावा नहीं करता; वह झगड़ता है, रोता है, फिर भी छोड़ने से इनकार करता है। कृष्ण उस प्रेम का आदर करते हैं: शीघ्र लौटने का वचन नहीं देते, पर प्रकट करते हैं कि उनकी अनुपस्थिति ही गोपियों का मन उनमें समेट रही है। सबसे मार्मिक हैं उद्धव, जो सिखाने आए थे और सीखकर लौटे; गोपियों के चरणों के नीचे लता बनने की उनकी कामना बताती है कि आध्यात्मिक जीवन का शिखर कहाँ है — उस हृदय में जो पूर्णतः गोविन्द का है।

एक दैनिक भाक्ते-अभ्यास

आज जब कोई अनुपस्थिति या हानि आप पर भारी पड़े, तो गोपियों की तरह उसे स्मरण में बदल दीजिए। याद कीजिए कि कृष्ण दृष्टि से दूर इसलिए रहते हैं कि मन निकट खिंच आए, अपनी तड़प को ही ध्यान बन जाने दीजिए, और अन्त में धीरे-धीरे जपिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

यह अध्याय भ्रमरगीत को भगवान् की विरह-विषयक अपनी शिक्षा के साथ रखता है। गोपी के आहत वचन, कृष्ण का यह आश्वासन कि वे मन को निकट लाने के लिए ही दृष्टि से ओझल हैं, उनकी चरण-रज को उद्धव का प्रणाम और नन्द की अश्रुपूर्ण भेंटें — सब एक ही सत्य तक ले जाते हैं: भगवान् विरह से भी प्रेम गहरा करते हैं, और ऐसा प्रेम मानव-जन्म का सर्वोच्च फल है। जब वे दूर लगें, तब हम याद रखें कि वे हमें पास खींच रहे हैं।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी), दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध), सैंतालीसवाँ अध्याय, पृष्ठ 301–309।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम् • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-47-the-song-of-the-bee-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट